

॥ ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ॥

अमृतवाणी बारहमासी

संकलनकर्ता एवं व्याख्याकार :

स्वामी श्री अङ्गडानन्दजी

श्री परमहंस आश्रम, शक्तेशगढ़, चुनार-मिर्जापुर (उ० प्र०)

फोन नं.-(०५४४३) २३८०४०



प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अङ्गडानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

२६ ए, फ्रेंच रोड (मर्चेन्ट क्लब के सामने)

चौपाटी, मुम्बई- ४०० ००७

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अङ्गदानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

२९ए, फ्रेंच रोड, मर्चेट क्लब के सामने,

चौपाटी, मुम्बई- ४०० ००७

फोन : (०२२) ५६५५५३००

फैक्स : (०९१-२२) २३६४३१०९

ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com

वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

© लेखक

संस्करण : मई २००७ - ५००० प्रतियाँ

मूल्य : रु. २०/-

मुद्रक :

प्रिया ग्राफिक्स

जे १२०, अन्सा इंडस्ट्रियल इस्टेट,

साकी विहार रोड, साकीनाका, मुंबई-७२.

फोन: ८५२ ०६७५, ८५९ ४४१७.

ISBN 81-89308-41-6



अनन्तश्री विभूषित,
योगिराज, युगपितामह
परमपूज्य स्वामी श्री परमानन्दजी
श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया
(चित्रकूट)
के परम पावन चरणों में
सादर समर्पित
अन्तस्प्रेरणा



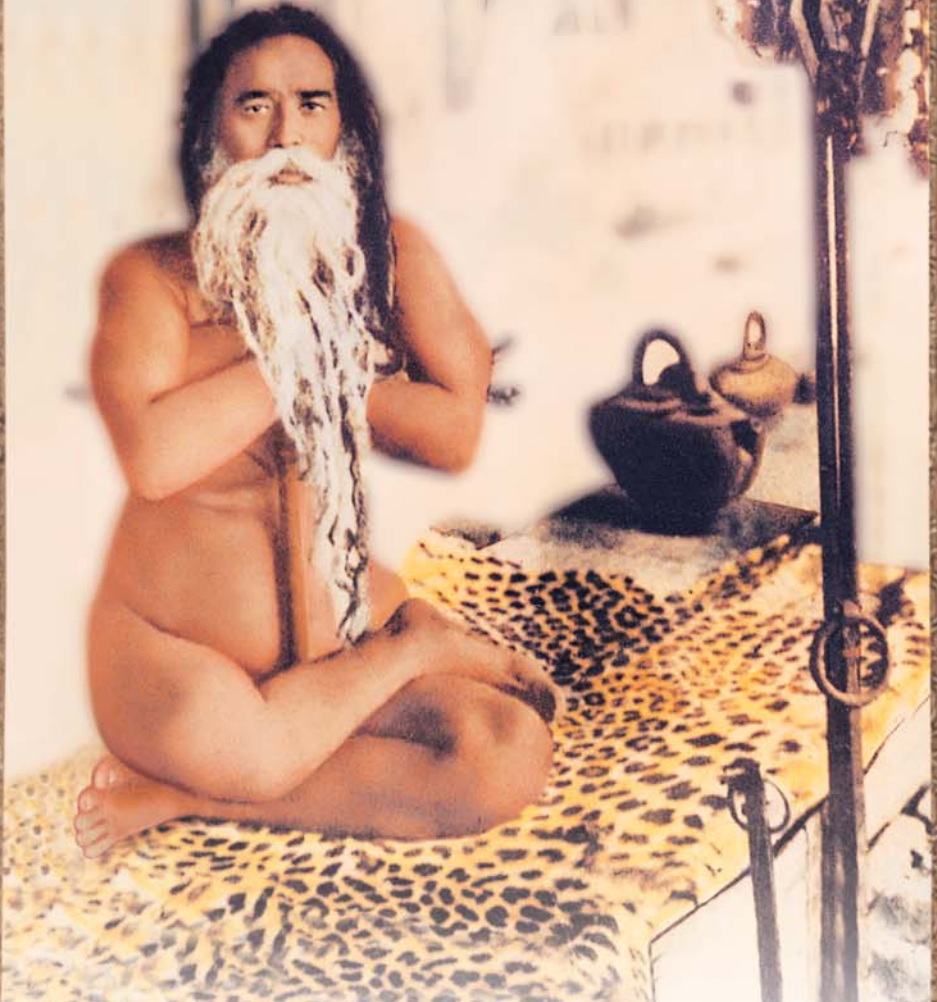
गुरु-वन्दना

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी॥
सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुखराशि, सदा एकरस निर्विकारी॥
अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेषा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी॥
चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी॥
हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भ्रम मिटायो, रूप लखायो करतारी॥
यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी॥



“आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च”

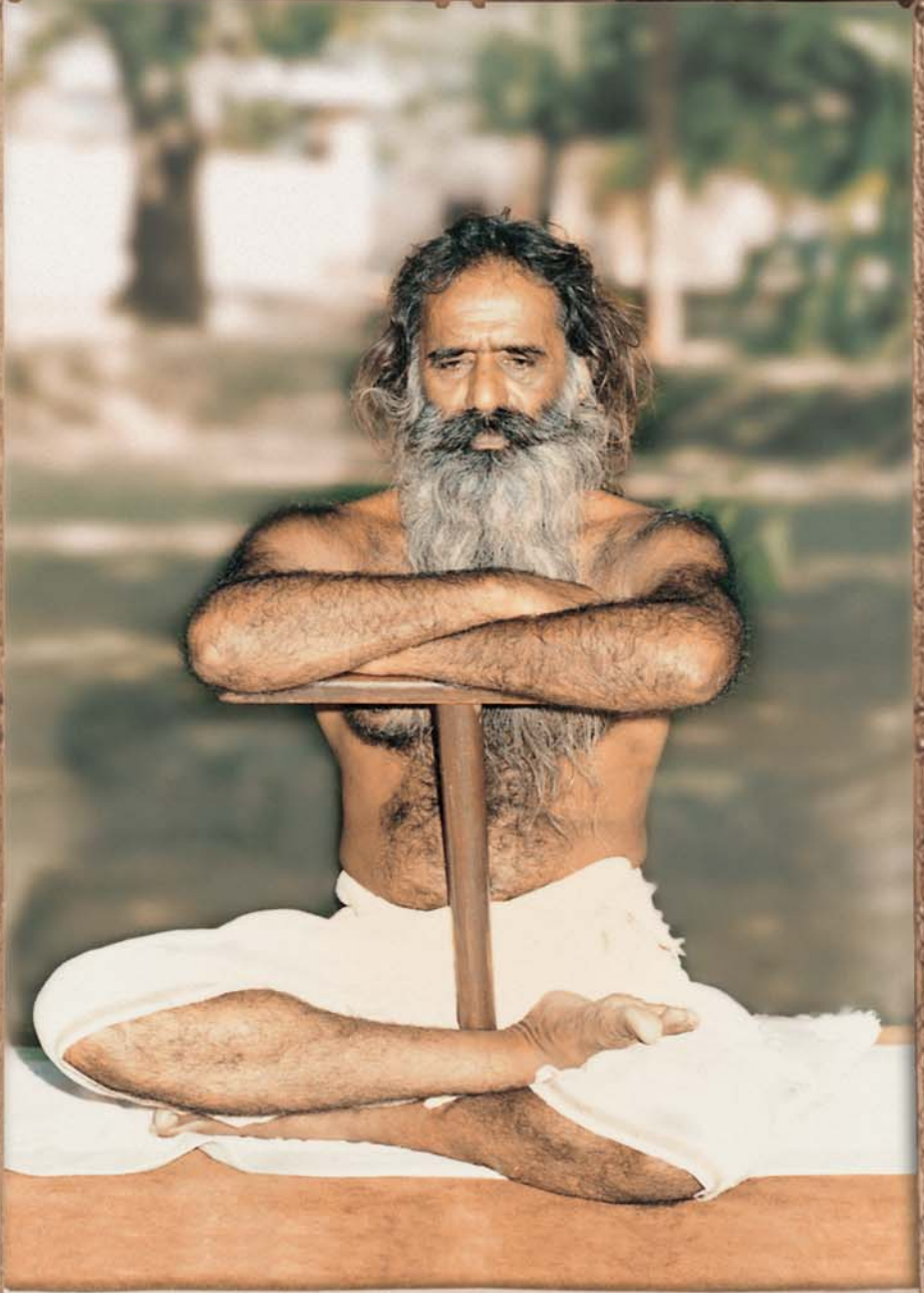


श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म: शुभ सम्बत् विक्रम १९६९ (१९११ ई.)

महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल ७, २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई.

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट



श्री स्वामी अङ्गडानन्द जी महाराज

भूमिका

अब सन्तों एवं साधकों के बीच परमशान्ति पथ-निर्देशिका पूज्य सद्गुरुदेव श्री परमहंस महाराजजी की अमरवाणी आत्मानुभूति के परिवेश में 'बारहमासी' के माध्यम से प्रस्तुत है, जिसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथ-प्रदर्शन किया गया है।

गुरु महाराज जब आहिस्ते-आहिस्ते सती अनुसुइया आश्रम में पहुँच गये, अनुभव में उनको सारी सिद्धियाँ मिलती गयीं। एक दिन वह बोले, आज सूपनखा के नाक-कान कट गये। एक दिन आया कि आज से भव-बंधन से तुम्हारा छुटकारा हो गया। एक लम्बा-सा दृश्य अनुभव में दिखायी पड़ा कि भव क्या है, बन्धन क्या है, मुक्ति क्या है? महाराज के मन में कुतूहल हुआ कि सहज स्वरूप कैसा होता है? इस पर अनुभव में आया कि वह मर गये और वही अपनी लाश को गंगा के किनारे जला रहे हैं। शव जलाकर राख गंगा में बहा दिया। पुनः गंगाजल लेकर उस स्थल की कालिमा तक धोकर उन्होंने साफ-सुथरा कर दिया, उस स्थल को एकदम निर्मल कर दिया। इतना कार्य करने में वह परिश्रम से लथपथ हो गये, थक गये, खड़े होकर कमर सीधी करने लगे। उसी समय गंगा से एक दिव्य पुरुष निकला। उसकी आकृति महाराजजी ही जैसी थी। तपाये हुए सोने की तरह दग-दग दमकता हुआ स्वरूप निकला। पूरी आकृति ऊपर से नीचे तक सुवर्णमय! बाल भी सोना, बरौनी सोना-सब कुछ सोना! वह स्वरूप जल से निकलकर महाराजजी की ओर आया। आकाशवाणी हुई- "यही तुम्हारा स्वरूप है, इन्हें प्रणाम करो। तुम्हें इसी स्वरूप में रहना है।" (वेदों में हिरण्यमय पुरुष का उल्लेख भी यही इंगित करता है।) अपने ही स्वरूप को महाराजजी ने प्रणाम किया। वह सुवर्णमय पुरुष महाराजजी के शरीर में समाहित हो गया।

गुरुदेव कहते थे, "हो! उस दिन से मेरा चेहरा बदल गया। पहले मैं काला-काला न जाने कैसा था! अब तो रूप ही बदल गया।" स्वरूप में स्थिति मिलते ही भगवान ने महाराज को बताया कि उनके दाहिने हाथ में यह गुण है कि यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति को छड़ी मार दें जिसे कल फाँसी होनी है तो छड़ी के प्रभाव से वह मृत्युदण्ड से मुक्त हो जायेगा, फाँसी नहीं होगी, सजा चाहे जो हो जाय। इसी प्रकार बायें हाथ में यह गुण है कि किसी के सिर पर वह बायाँ हाथ रख दें तो उसके सब

कर्म हो जायँ। किसी दुःखी व्यक्ति को वह भला-बुरा कह दें, गाली या भर्त्सना कर दें तो उसका सब दुःख मिट जायेगा। आपकी विभूति में यह गुण है। इस प्रकार निवृत्ति के पश्चात् तीन-चार अस्त्र भगवान ने महाराजजी को प्रदान कर रखे थे।

महाराजजी कहते थे, “हो! मैं गाली लोगों के कल्याण के लिये दिया करता हूँ अन्यथा गाली देना कहाँ शोभा है? ‘गाली देत न पावहु सोभा’- सन्तों के लिये यह कहाँ शोभा है, लेकिन हमें आदेश है। यदि मैं दो-चार खरी-खोटी न सुनाऊँ तो जिस कमी की पूर्ति के लिये व्यक्ति आया है उसकी पूर्ति ही नहीं होगी। और यह बड़बड़ मेरे गले के ऊपर ही है; भीतर अन्तःकरण एकदम शान्त है, पता ही नहीं कहाँ क्या हो रहा है?”

महाराजजी कहते थे, “ हो! सिद्धि कुछ भी नहीं है। जिस परमात्मा की हमें चाह है पहले वह सिद्ध हो जाय- यही परमसिद्धि है। इसके साथ ही उस महापुरुष की वाणी सिद्ध हो जाती है। जो उसने मन से इच्छा कर लिया, वही होने लगता है, यही सिद्धि है।

स्थितिप्राप्ति के पश्चात् महाराजजी अनुसुइया आश्रम में विराजमान थे। उस समय पूज्यश्री की सेवा में चार-पाँच साधक ही थे- स्वामी श्री सच्चिदानन्दजी महाराज, श्री अखंडानन्दजी महाराज, श्री स्वयमानन्दजी महाराज और श्री शिवानन्दजी महाराज। दो सेवारत श्री रामलखनदासजी तथा बग्गड़ बाबा भी थे जिनमें कुछ विचरण में तथा कुछ उपस्थित थे। अकस्मात् महाराजजी बोले, “हो! तीन दिन से लगातार आकाश गूँज रहा है और निरन्तर एक भजन आ रहा है। हमने पहले कभी इस भजन को नहीं सुना था यह फिर भी आ रहा है। लेटते, बैठते, चलते, खड़े रहते, ध्यान में होने पर भी यह हठात् सुनायी पड़ रहा है। देखो मैं भूल जाऊँगा, इसे तुम लोग याद कर लो।” महाराजजी ने वह भजन उन दो-तीन साधकों को रटा दिया। वह कहने लगे, “याद कर लो! आकाश बोल रहा है।” साधकों ने याद कर लिया। महाराजजी का कार्य पूर्ण हो गया। साधकों को याद कराकर वह भूल भी गये। इस भजन के सन्दर्भ में महाराजजी बहुत कम चर्चा करते थे। यदा-कदा वे कहते थे, “हो! अकसवा बोले! तीन दिन तीन रात हमारा पीछा ही न छोड़े।”

हमने इस भजन को विशेष महत्व नहीं दिया। महाराजजी ने ब्रह्मविद्या के लिये आदेश दिया था इसके लिये उनका निर्देश नहीं था। हमें महाराजजी ने यह भजन याद करने को कहा भी नहीं था अतः हमने इसे विशेष महत्व नहीं दिया।

बारहमासी

दोहा-चैत चहत चितचोर को, चेला चतुर सुजान।
चित के मिले न चौधरी, भई चित में गलतान॥

चतुर क्या करी चतुर ने चतुराई,
हमारा चित चेत चकोर किया।
अपने चित चाँदनि चमकाई॥
चकचान अचानक चन्द चड़ा,
चन्दा की चमक चित पर छाई।
चन्दा चहुँ ओर चकोर चला,
चित चेतन में गिरदी खाई॥
धरनी पर आया,
चमक में खो दर्ई काया।
चला गया चित चोर,
चतुर जब तक चलने नहीं पाया॥

लावनी

लावनी सुन बारहमासी।
कटै जासे जनम मरण फाँसी॥ टेक॥
चैत में चिन्ता यह कीजै,
कि यह तन घड़ी घड़ी छीजै।
इससे करिये तनिक विचार,
सार वस्तु है क्या संसार?॥

दोहा-सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात विचार॥

फिरै क्या मथुरा अरु कासी।
लावनी सुन बारहमासी॥१॥
वैसाख में वक्त तूने पाया,
यहाँ कोई रहन नहीं आया।
काल ने सबही को खाया,
यह सब झूठी है माया॥

दोहा-भोग लोक परलोक का, सबही त्यागे राग।

रहे न इनकी कामना, ताहि कहैं वैराग।।

तितिक्षा तो सों परकासी।

लावनी सुन बारहमासी।।२।।

जेठ में जतन यही करना,

मिटे जासे जनम और मरना।

मन इन्द्रिय विषयों से परिहरना,

लीजिए सन्तों का सरना।।

दोहा-श्रद्धा कर गुरु वेद में, कर मन का समाधान।

कर्म अकर्म के साधन त्यागे, सहे मान अपमान।।

जगत् से रहना नित्य उदासी।

लावनी सुन बारहमासी।।३।।

आषाढ़ में सत् संगति करना,

वहाँ तू पावे सब मरमा।

तुझे वहाँ होवे जिज्ञासा,

तब लगे मोक्ष की आसा।।

दोहा-परमानन्द की प्राप्ति, अरु अनरथ का नास।

यह इच्छा मन में रहे, कहे मुमुक्षा तास।।

हानि हो जिससे चौरासी।

लावनी सुन बारहमासी।।४।।

सावन में शरणागत होना,

पैर सद्गुरु के धो पीना।

साफ जब होय तोहरा सीना,

रंग तब रहनी का दीना।।

दोहा-तत्वमसी के अरथ को, तोय करूँ परकास।

संशय शोक मिटे तेरा, होय अविद्या नास।।

मिटे तव भरम भेद रासी।

लावनी सुन बारहमासी।।५।।

महीना भादों का आया भरम सब छीजै।
गुरु की भक्ति चित्त धार प्रेम रस पीजै।।
ईश्वर से अधिक भक्ति गुरु की कीजै।
इस मानव तन को पाय सुफल करि लीजै।।

दोहा—ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति, गुरु के लक्षण जान।
इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहचान।।

होय अमरापुर वासी।
लावनी सुन बारहमासी।।६।।
क्वार में करना यही उपाय,
तत्वमसी श्रवणन मन लाय।
जुगुति से मनन करो प्यारे,
खुले जासे अन्दर के ताले।।

दोहा—निदिध्यासन के अन्त में, ऐसा होवे भान।
ब्रह्म आत्मा एक लख, तब होय ब्रह्म का ज्ञान।।

तहाँ मिथ्या जग नासी।
लावनी सुन बारहमासी।।७।।
कार्तिक में करम सभी नाशा,
ज्ञान जब उर में परकाशा।
तब अपना आप रूप भाषा,
उसी का लखो तमाशा।।

दोहा—आर—पार हमरो नहीं, नहीं देश काल से अन्त।
मैं ही अखण्डित एक हूँ, सब वस्तु का तन्त।।

मैं ही चेतन अविनासी।
लावनी सुन बारहमासी।।८।।
अगहन में ज्ञान अग्नि जागी,
लोक सब दाहन कहँ लागी।
फूँक दिये ब्रह्मा अरु विष्णु,
फूँक दिये राम अरु कृष्ण।।

दोहा—जलत जलत ऐसी जली, जाको आर न पार।
ईश्वर जीव ब्रह्म अरु माया, फूँक दियो संसार॥

बिना ईधन के परकासी।
लावनी सुन बारहमासी॥६॥

पूष में पूरन आपै आप,
नहिं तहाँ पुन्य अरु पाप।
कहो अब जपूँ कौन का जाप,
मिटा सब जनम—मरण सन्ताप॥

दोहा—ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, ध्याता ध्यान न ध्येय।
मम निज शुद्ध स्वरूप में, उपाध्येय नहिं हेय॥

करूँ फिर किसकी तल्लासी।
लावनी सुन बारहमासी॥१०॥

माघ में मिटी मिलन की भूख,
तहाँ पर नहिं आसिक माशूक।
इश्क फिर किसका होवे,
वृथा वक्त तूँ क्यों खोवे॥

दोहा—व्यापक परमानन्द में, नहिं आसिक माशूक।
लक्ष्य रूप में मार निशाना, वृथा विलोवे थूक॥

करावै क्यों जग में हाँसी।
लावनी सुन बारहमासी॥११॥

बसन्त ऋतु फाल्गुन में आवे,
खेल यह प्रारब्ध रचवावे।
इत्र गुलाल ज्ञान रोरी,
खेलते भर—भर के झोरी॥

दोहा—होली अविद्या फूँकि के, हो गये गुप्तानन्द।
समझे कोई सुघड़ विवेकी, क्या समझे मतिमन्द॥

जगत् की धूल उड़ी खासी।
लावनी सुन बारहमासी॥१२॥
कटै जासे जनम मरण फाँसी॥



स्पष्टीकरण

अब इस अमरवाणी बारहमासी का स्पष्टीकरण व्याख्यात्मक ढंग से किया जाता है, जिसके अध्ययन एवं मनन से योग के सूक्ष्म तत्त्वों की जानकारी सम्भव है। आपकी कविता का प्रारम्भ मास 'चैत' से है। प्रायः-

मोहनिसाँ सबु सोवनिहारा।

देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥ (मानस, २/६२/१)

सभी लोग मोहरूपी रात्रि में अचेतावस्था में सोये हुए हैं। जो कुछ भी रात-दिन दौड़ लगाकर अर्जित करते हैं, मात्र स्वप्न है। अधिकांशतः लोगों ने अचेतावस्था मोह में ही चेत-अचेत की सीमा निर्धारित कर ली है। यथा-

कोई चुनाव प्रतिद्वन्द्वी कहता है कि मेरे पड़ोसी पश्चाताप कर रहे हैं किन्तु मैं तो चुनाव के पूर्व ही चेत गया था। कुछ पूँजी चुनाव प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त करने के लिए पहले ही एकत्रित कर ली थी। एक सेठ कहते हैं कि, मैं तो बादल देखकर ही चेत गया था कि तिल के भाव में अवश्य परिवर्तन होगा। लेकिन वस्तुतः ये सभी अचेत (पराधीन) ही हैं। चेता हुआ चित्त तभी कहलाता है, जब यह आत्मा अपने स्वरूप को पाने के लिए व्यग्र होने लगे। भरत और कागभुशुण्डि इसी श्रेणी के चेते हुए पुरुष थे। भरत अवध का सम्पूर्ण राज्य तृणवत् त्याग राम-स्नेह के लिए आतुर हो उठे। कागभुशुण्डि जब चेत की अवस्था में पहुँचे तो उनके मन से समस्त वासनाएँ समाप्त हो गईं। जैसा कि-

मन ते सकल बासना भागी।

केवल राम चरन लय लागी॥ (मानस, ७/१०६/६)

वास्तव में चेत तभी सम्भव है जब केवल चितचोर की ही चाह रह जाय। भगवान ही चितचोर हैं, जिनका स्पर्श करके चित्त उन्हीं में लीन हो जाता है। चुराई हुई वस्तु तो सदा के लिए खो जाती है। इसी आधार पर इस अमरवाणी की शुरुआत है। पहले बारह महीनों का सारांश है और बाद में लावनी। सारांश शब्दों में देखें।

दोहा-चैत चहत चितचोर को, चेला चतुर सुजान।

चित के मिले न चौधरी, भई चित में गलतान॥

भावार्थ- चेता हुआ चित्त तब समझे जब केवल चितचोर की ही चाह रह जाय। वही चेला की स्थिति है, वही चतुर है और सुजान की स्थिति वाला है। प्रायः लोग चतुर ही तो बने हैं, किन्तु महापुरुषों की दृष्टि में अन्यत्र कहीं भी चतुराई का स्थान है ही नहीं। जैसा कि-

चतुराई चूल्हे पड़ी, घूरे पड़े अचार।

तुलसी राम भजन बिनु, चारो बरन चमार।।

ऐसी चतुराई में आग लगे जो भगवत्-चिन्तनविहीन हो और ऐसे आचार कूड़ा-करकट में जायँ जो हमें भगवद्-भजन से वंचित रखते हैं। चितचोर की चाह तो पैदा हुई; किन्तु चित्त के चौधरी अर्थात् चित्त को स्थिर करनेवाले सद्गुरु नहीं मिले तो ग्लानि बनी ही रह जाती है।

टिप्पणी- हम दो घण्टे भजन में बैठकर दस मिनट भी अपने पक्ष में नहीं पाते और अन्ततः हताश होकर बैठ जाते हैं। साथ ही यह कहा करते हैं कि मन ही नहीं लगता। जब तक चित्त के चौधरी अर्थात् उसकी गतिविधि को पकड़नेवाले सद्गुरु नहीं मिलते, तब तक वह रुकता नहीं। वे महापुरुष हृदय-देश से उस चित्त की गतिविधि पर नियंत्रण करते रहते हैं। बाहर से सम्बन्ध कम रहता है।

सम्बन्ध- आखिर चतुराई है क्या?

चतुर क्या करी चतुर ने चतुराई,

हमारा चित चेत चकोर किया।

अपने चित चाँदनि चमकाई।।

भावार्थ- चतुर ने भला कौन-सी चतुराई की? चूँकि महापुरुष ही बोलनेवाले हैं, इसलिए इन्हीं महापुरुष की रहनी के प्रति अपने आप को चकोर बना लिया। ऐसा चकोर बनने पर महापुरुष के चित्त का प्रकाश अपने चित्त में पा जाता है। जैसा कि, 'अपने चित चाँदनि चमकाई'।

चकचान अचानक चन्द चढ़ा,

चन्दा की चमक चित पर छाई।

भला वह प्रकाश आता कैसे है? आप चकोर बनकर लग भर जायँ, अनायास ही वह प्रकाश चित्त पर बढ़ने लगता है।

टिप्पणी- यहाँ चन्दा आकाश का कोई चन्द्रमा नहीं बल्कि परमात्मा की वह प्रभा है, जो चित्त पर चकोर बनने से स्वाभाविक बढ़ती रहती है। महापुरुष बाहरी दृष्टान्तों के माध्यम से अन्दर की स्थितियों को समझाते आये हैं। इस भगवत्-पथ में बाहरी चन्द्रमा से कोई प्रयोजन नहीं है, जैसा कि, 'मन ससि चित्त महान'। मन ही चन्द्रमा है और शून्य ही आकाश है। जब शून्य में मन रुकने की क्षमता पा लेता है तो वही चन्द्रमा कहलाता है। (चन्द्रमा की संज्ञास्थिति यही है) इसी कारण वह चन्दा अन्यत्र नहीं चढ़ता बल्कि जो चेतन की चमक है वह चित्त पर छा जाती है। यह तभी सम्भव है जब चकोर के गुणधर्म आप में हों।

**चन्दा चहुँ ओर चकोर चला,
चित चेतन में गिरदी खाई ।।**

अब उस चेतना का प्रकाश, जो कि चित्त पर छाया हुआ है, चित्त तक ही सीमित न रहकर सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगता है। सर्वत्र वह स्वरूप ही दिखाई देता है। जैसा कि-

सरगु नरकु अपबरगु समाना ।

जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ।। (मानस, २/१३०/७)

चित्त में वह प्रकाश आ जाने के बाद न स्वर्ग स्वर्ग ही रह जाता है और न नरक नरक ही। जब तक एकता नहीं हो जाती, तब तक रास्ता शेष है। इसलिए “चकोर चला, चित चेतन में गिरदी खाई”। जैसे कुछ और आगे चला तो चित्त उसी रूप का स्पर्श कर वही हो जाता है। सर्वत्र दिखाई देता है पर है तो अलग, इसीलिए चकोर है। जहाँ स्पर्श किया तो उसी में विलीन हो गया।

**धरती पर आया,
चमक में खो दई काया ।**

जब उसी रूप में अपने को खो ही दिया तो ऐसी सत्ता नहीं कि जिसके लिए खोज करे। आखिर यह स्थिति हुई कहाँ? इसी शरीररूपी पृथ्वी में ही। जैसा कि-

धड़ धरती का एकै लेखा । जस बाहर तस भीतर देखा ।

धड़ कहते हैं शरीर को और धरती कहते हैं बाहरी पृथ्वी को। जो कुछ भी अन्दर दिखाई देता है वह एक ही जैसा है। शरीररूपी पृथ्वी में चित्त चेतन ही जैसा हो गया और जन्म-मरण की प्रक्रिया खो दी। काया जन्म-मरण का वह विधान है जो जीवात्मा को पिण्डों का रूप देता है। यह शरीर ही चला गया तो संसार कैसा? तद्रूप हो जाने पर एक में एक का भान नहीं होता, इसलिए चित्तचोर भी चला गया।

चला गया चित्तचोर,

चतुर जब तक चलने नहीं पाया ।।

इसके आगे चतुर की कोई चाह नहीं। उसके खो जाने की स्थिति तक चतुर नहीं चल पाता। जहाँ तक मन-बुद्धि की पकड़ है वहाँ तक साधक चलता है। उसके बाद की कुछ ऐसी अवस्था है जिसे चेतन (इष्टदेव) ही समझा-बुझाकर अपनी स्थिति प्रदान कर देते हैं।

टिप्पणी- अब आगे के महीनों में इसी का विस्तार है, जिसे समझकर साधक साधना में सक्रिय भाग ले सकता है। किसी न किसी अवस्था में आगे यह सबके लिए सुलभ हो सकता है। भले ही हम किसी परिस्थिति में क्यों न हों।

लावनी

‘लावनी’ ले आनेवाली को कहते हैं। भजनमयी प्रवृत्ति ही उस परम चेतना को लाने में सफल होती है। अतः चिन्तन की प्रवृत्ति को लावनी कहते हैं। लगन, लावनी, लव इत्यादि एक दूसरे के पर्याय हैं। इनमें से कोई भी शब्द कहा जाय तो तात्पर्य वही निकलता है, केवल थोड़ा उतार-चढ़ाव है। जब कभी किसी की लगन चेतना को पाने के लिए प्रवृत्त हुई है तो उसका यही रूप रहा है।

जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय।

सुरति डोर लागी रहे, तार टूटि न जाय॥

आठों पहर सोते एवं जागते समय ऐसी लगन बनी रहे कि तार न टूटे। ऐसा नहीं कि गर्मी में न होगा तो जाड़े में होगा। हर देशकाल में सुरति की डोर लगाना है, इसलिए इसे बारहमासी कहते हैं। यह केवल सुबह-शाम तक ही सीमित नहीं है। सुबह-शाम भजन और अन्य समय में मन को अनियंत्रित रखना भजन नहीं है। यह तो केवल प्रयास मात्र है जिससे आगे पथ में बढ़ा जा सकता है। अब आइये इस पद पर-

लावनी सुन बारहमासी।

कटै जासे जनम मरण फाँसी॥टेक॥

अब आप उस लगन के बारे में सुनें, जिसमें आठों पहर, बारहों महीने निरन्तर लगे रहने पर जन्म-मरण की फाँसी कटती है और परम चेतन स्वरूप को जीव प्राप्त हो जाता है। जैसे, ‘दिन दिन बढ़त सवायो।’ -प्रतिदिन उसमें सवाई बढ़ने पर ही भलाई है। ऐसी लगन का सदा महत्त्व रहा है जो जन्म-मरण की फाँसी को काटने में समर्थ है।

सम्बन्ध- अब यदि भजन करनेवाले के लिए ही कहा जाय तो सांसारिक व्यक्तियों के लिए कोई उपाय ही नहीं बचता। इसलिए जो जहाँ खड़ा है उसको वहीं से चेतने का विधान बताते हुए आगे क्रियात्मक विस्तार किया गया है।

साधना-क्रम में बारह महीने

चैत में चिन्ता यह कीजै,

कि यह तन घड़ी घड़ी छीजै।

इससे करिये तनिक विचार,

सार वस्तु है क्या संसार?॥

भावार्थ- जब हम परिस्थिति में हैं तो सिद्ध हुआ कि चैतन्यता नहीं है। अब चैतन्य होने के लिए शरीर की स्थिति पर विचार कीजिए कि यह हर घड़ी नष्टप्राय होता जा रहा है। हम सोचते हैं कि आयु बढ़ गई; परन्तु ऐसा नहीं है। मान लिया जाय कि हमारी

आयु ६० वर्ष की है और हम ५० वर्ष की अवस्था में पहुँच गये तब १० वर्ष ही तो शेष रहे। शरीर हर घड़ी काल के गाल में सिमटता जा रहा है और न चाहते हुए भी हम देखते हैं कि अपने माता-पिता एवं परमप्रिय पुत्र को फेंक आते हैं। जब यह शरीर ही नाशवान् है तो भोग्य पदार्थ रहते हुए भी आप बरबस खींचकर पता नहीं कहाँ फेंक दिये जाते हैं। एक ग्रास भी अधिक नहीं खा सकते। भोग्य पदार्थ ही तो संसार है। जैसा कि,

‘मैं अरु मोर तोर तैं माया।’ (मानस, ३/१४/२)

जब शरीर ही मरणधर्मा है तो विचार करें कि क्या संसार सत्य है? सिद्ध है कि संसार असत्य है।

टिप्पणी- याद रखें-

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।

सो सब माया जानेहु भाई॥ (मानस, ३/१४/३)

इन्द्रियों और उनके विषयों में मन जहाँ तक उड़ान भर पाता है, वहाँ तक अपने भोग की ही सामग्री खोजता है। यही सब माया है, जिसका नाम संसार है। अन्त में सब पदार्थ छूट जाते हैं। यही देखकर महात्मा बुद्ध को वैराग्य हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि, अर्जुन! यह शरीर क्षणभंगुर है, पर है देवताओं को भी दुर्लभ। यही मेरे प्राप्ति का साधन एवं भव-बन्धन से छूटने का माध्यम है।

सम्बन्ध- जिस शरीर के लिए हमें भोग्य सामग्री अथवा संसार प्रिय है, वही नाशवान् है, तो आखिर सत्य है क्या?-

दोहा- सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।

नित्यानित्य विवेकिया, लीजै बात विचार॥

भावार्थ- सत्य वस्तु अथवा जो परमसत्य है, वह है आत्मा। यह महापुरुष का निर्णय है। जगत् का प्रसार देखने में बड़ा सुन्दर है, परन्तु है सर्वथा झूठा। **‘नित्यानित्य विवेकिया’**-सत्य क्या है और असत्य क्या है?— इस पर विवेक करें। विचारों के द्वारा इस वार्ता को लिया जाय, विचारहीनों के लिए यहाँ ठिकाना नहीं है।

टिप्पणी- विचारहीनता से धोखे ही धोखे में समय बीत जायेगा। विचारहीन के लिए बहुमूल्य मानव शरीर नगण्य है।

फिरै क्या मथुरा अरु काशी।

लावनी सुन बारहमासी॥

काशी, मथुरा आदि तीर्थों में भ्रमण करने से अब इस लगन का कोई महत्त्व नहीं है। यह तो मानसिक प्रवृत्ति है जो प्रभु की ओर निरन्तर प्रवाहित होती रहती है और

इससे जन्म-मरण का बन्धन टूट जाता है। लगन की इसी परिस्थिति में आगे बढ़ने का वक्त मिलता है।

**वैसाख में वक्त तूने पाया,
यहाँ कोई रहन नहीं आया।
काल ने सबही को खाया,
यह सब झूठी है माया।।**

भावार्थ- वैशाख=विशेष सबूत, विशेष प्रमाण। शरीर का काल के गाल में होने का संसार की नश्वरता से मिला है। इसकी नश्वरता पर विचार कर संसार की नश्वरता दिखाई देने से हम चिन्तित अवश्य होंगे, इसलिए वक्त मिला है। वह भला किस प्रकार-

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सबग्रन्थि गावा।।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

(मानस, ७/४२/७-८)

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताइ।

कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोस लगाइ।। (मानस, ७/४३)

बड़े भाग्य से यह मानव-तन मिला है। यह साधन का धाम एवं मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर जो अपनी आवागमन की स्थिति से छुटकारा नहीं पा लेता, वह सिर पटक-पटककर पश्चाताप करता है। काल, कर्म और ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है, जबकि दोष उसी का है। मानव-तन ही संसार से पार होने का साधन है, शेष योनियाँ तो केवल भोग भोगने के लिए ही हैं। इसलिए महापुरुष कहते हैं, तुझे वक्त मिला है। निःसन्देह यह क्षणभंगुर है पर आज दिन तो सामने उपस्थित है। इस समय तो पास है। शायद अब भी दृष्टि संसार की तरफ झुके तो कहते हैं कि काल ने सबको बरबस ही खा लिया। राम, कृष्ण आदि कोई भी तो दिखाई नहीं पड़ता। इससे सिद्ध है कि माया सर्वथा झूठी है।

टिप्पणी- उन महापुरुषों ने शरीर के रहते ही परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया। वे शरीर से भिन्न व्यापक स्थिति को उपलब्ध कर चुके थे। यही तो करना है-

‘सन्तो! जीवित ही करु आशा।’

जीवित में मरना भला, जो मर जाने कोय।

मरने से पहले मरे, अजर अमर सोइ होय।।

सम्बन्ध- माया के विषय में पुनः चेतावनी देते हैं, कारण कि एक बार समझने से यह पिण्ड नहीं छोड़ती है। प्रायः सभी तो पत्रे उलटते हैं पर हाथ कुछ भी नहीं लगता। इसीलिए महापुरुष वैराग्य की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं-

दोहा-भोग लोक परलोक का, सबही त्यागे राग।

रहे न इनकी कामना, ताहि कहें वैराग।।

इस लोक के भोग, जो छोटी-सी झोपड़ी से लेकर राष्ट्रों तक का सिलसिला है और जो परलोक, बैकुण्ठ आदि की मान्यताएँ हैं, जब इनकी लेशमात्र भी कामना न रह जाय, तब वैराग्य की स्थिति समझना चाहिए (इसी का नाम वैराग्य है)। वैराग्य का तात्पर्य लगाव के न होने से है।

तितिक्षा तो सों परकासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

तितिक्षा=त्याग की इच्छा। इस त्याग की इच्छा की कसौटी तो साधक पर निर्भर करती है। यदि जन्म-मरण की फाँसी को काटना है तो त्याग की प्रबल इच्छा करनी होगी। तितिक्षा का प्रकाश तुम्हीं से होना है। इससे स्पष्ट है कि यह महापुरुष के क्षेत्र की बात नहीं है। वे तब देखेंगे जब हमारे अन्दर त्याग व पाने की प्रबल इच्छा होगी।

जेठ में जतन यही करना,

मिटे जासे जनम और मरना।

मन इन्द्रिय विषयों से परिहरना,

लीजिए सन्तों का सरना।।

भावार्थ- जेठ=पहले पैदा होनेवाला। साधन के प्रथम चरण में केवल यही यतन करना है, ताकि जन्म-मरण का बन्धन छूट जाय। ऋद्धियों और सिद्धियों में उलझने की आवश्यकता नहीं है। भला वह कौन-सा यत्न है? मनसहित इन्द्रियों को विषयों से उपराम रखते हुए सन्तों की शरण लेना!

सम्बन्ध- अब अन्य सन्तों के साथ-साथ सद्गुरु का विशेष स्थान दर्शाते हुए कहते हैं कि-

दोहा-श्रद्धा कर गुरु वेद में, कर मन का समाधान।

कर्म अकर्म के साधन त्यागे, सहे मान अपमान।।

सन्तों में जो सद्गुरु हैं, उनमें और उनकी विदित वाणी में मन का समाधान पूर्ण श्रद्धा से कर दें। इसके बाहर कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। यदि खोजते हैं तो साधक नहीं। कर्म-अकर्म का तात्पर्य निष्काम भाव से करना है। बौद्धिक स्तर पर अकर्मता की स्थिति को बनाये रखना पड़ता है जिससे कि कहीं राग न आये। फल की इच्छा न जागृत हो जाय, ऐसी जिम्मेदारी त्याग दें। केवल उनके द्वारा मिलनेवाला मान-अपमान सहते जाओ।

टिप्पणी- जब मन को सद्गुरु के चरणों में समाधान करने की स्थिति आ गई तो कौन साधन बाकी है? जब मन को बाहर निकलने का स्थान ही नहीं मिलता तो कामना कैसे करेगा? क्रिया यही होती है परन्तु वह महापुरुष के ऊपर निर्भर रहता है।

जगत से रहना नित्य उदासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

जगत् से निरन्तर उदास रहना है। यदि जगत् से लगाव हुआ तो गुण- धर्म और उनकी वाणी का अनुसरण सब कुछ छूट जायेगा। ऐसी स्थिति में मन का समाधान करना असम्भव है। यदि मन में उधर का लगाव हुआ तो श्रद्धा और समर्पण की कसौटी टूट जायेगी। उस चेतन तत्त्व को लानेवाली प्रवृत्ति के विषय में सुनो, जो निरन्तर प्रवाहित रहनेवाली है और जिसमें काल का भेद नहीं है।

सम्बन्ध- सन्तों में जो सद्गुरु हैं उनमें और उनकी वाणी में मन का समाधान बताया गया है, किन्तु एकदम मन लगता नहीं। ऐसी परिस्थिति में कुछ करना है।

आषाढ़ में सत्संगति करना,

वहाँ तू पावे सब मरमा।

तुझे वहाँ होवे जिज्ञासा,

तब लगे मोक्ष की आसा।।

भावार्थ- आषाढ़=आष+आढ़=पुरानी आशा। वह आशा जो पुरातन है, जो परमपुरुष परमात्मा है, उसके प्रति जागृत हुई। बस जागृत होते ही आगे गति मिलने लगी। अब साधक को केवल सत्संग करना है। जिससे आगे का सम्पूर्ण भेद पा जायेगा। सत्संग का तात्पर्य केवल वार्ता नहीं, अपितु ध्यान व चिन्तन से है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि, 'सत्य वस्तु है आत्मा' उस आत्मा में मन को खड़ा करना है। आत्मा सत्य तो है, पर दिखाई नहीं देती। ऐसे महापुरुष जो आत्मा को पाकर परमात्मस्वरूप में स्थित हैं, उनके ही स्वरूप में मन को समेटकर चिन्तन के द्वारा लगाना या संग करना है। ज्यों-ज्यों गुप्त भेद मिलता जायेगा, त्यों-त्यों उसे जानने की इच्छा प्रबल होती जायेगी तब फिर मोक्ष की आशा लग जायेगी। वास्तव में इसी पथ में छुटकारा मिलता है तब तक सभी लोग कहते भर हैं; किन्तु-

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।। (मानस, ७/८८/७)

टिप्पणी- सुग्रीव ने जब राम के अतुल बल का प्रमाण प्रत्यक्ष देखा, तभी उसकी आशा विश्वास सहित बलवती हो गई।

सम्बन्ध- मोक्ष की आशा लगी; परन्तु वह मोक्ष अथवा मुमुक्षा है कैसी?-

दोहा—परमानन्द की प्राप्ति, अरु अनर्थ का नाश।

यह इच्छा मन में रहे, कहे मुमुक्षा ताश।।

अनर्थ अथवा शुभाशुभ क्षेत्र का नाश हो जाय और परमानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। मन के अन्दर इतनी कामना के शेष रह जाने का नाम मुमुक्षा है।

हानि हो जिससे चौरासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

चौरासी लाख योनियों में आबद्ध संसार की हानि इसके द्वारा हो जायेगी। कुछ युक्तियों से यह (चौरासी लाख) भाव, मापदण्ड पूर्व से ही चला आ रहा है। आवागमन से छुटकारा दिलानेवाली लगन का विधान है कि यह अहर्निश चलती रहे, जब तक कि वह तत्त्व दिखाई न पड़े। जैसा कि—

आठ पहर लागा रहे, भजन तेल की धार।

जगत बलाबलि खाक है, हरि रस है आधार।।

अब केवल मोक्ष की ही इच्छा शेष है। ऐसी स्थिति में साधक के क्या लक्षण हैं?—

सावन में शरणागत होना,

पैर सद्गुरु के धो पीना।

साफ जब होय तोहरा सीना,

रंग तब रहनी का दीना।।

भावार्थ— श्रावण=श्रवण करना। जो इष्टदेव से मिलनेवाले धारावाही आदेश हैं उन्हीं के अनुसार अपने को ढालना है। जब धारावाही आदेशों का ताँता लग जाता है, तब सद्गुरु हृदय से पथ-प्रदर्शन करते हैं। उन्हीं के पालन में इष्ट की शरण लेते हुए उनके चरणों को मन के द्वारा धोकर पीते जाओ। बाहर चरण धोने का विधान नहीं है। ज्यों-ज्यों हम सद्गुरु के चरणों में ध्यान करते जायेंगे, त्यों-त्यों वह रहनी हृदय में प्रगत होती जायेगी।

टिप्पणी— जन्म-जन्मान्तर से लगे हुए मल-आवरण या विकल्प धुल जाने पर सन्तों की रहनी का रंग ढलता है अथवा स्थिरता आने लगती है। जैसे—

(हे हरि) कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

विगत मान, सम शीलत मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो।।

अब सन्तों की रहनी आने लगती है।

दोहा—तत्त्वमसी के अर्थ को, तोय करूँ परकास।

संशय शोक मिटे तेरा, होय अविद्या नास।।

जब हृदय के मलावरण व विक्षेप समाप्त होने लगे और रहनी आने लगे तब हृदय से पथ-प्रदर्शन करनेवाले महापुरुष 'तत्त्वमसि' के अर्थ का प्रकाश करते हैं अर्थात् वह परमतत्त्व परमात्मा तुझसे अभिन्न है, अनुभवी स्तर पर महापुरुष अनुभवों के माध्यम से उसका प्रकाश करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप संशय-शोक सदा के लिए मिट जाते हैं और अविद्या नष्ट हो जाती है। यह तभी सम्भव है जब लगन न टूटे।

मिटे तब भ्रम भेद रासी।

लावनी सुन बारहमासी॥

इसके साथ ही भ्रम और भेद का समूह मिट जाता है, जिसमें लगन के टूटने का विधान नहीं है।

सम्बन्ध- जब भक्त पर रहनी का रंग चढ़ जाता है, दूसरे शब्दों में साधक का हृदय इष्ट की रहनी में ढलने लगता है। जैसे भादों में फसल-सम्बन्धी भरपूरता रहती है, वैसे ही साधक के हृदय में इस स्थिति में भजन की भरपूरता रहती है।

महीना भादों का आया भ्रम सब छीजै।

गुरु की भक्ति चित्त धार प्रेम रस पीजै॥

ईश्वर से अधिक भक्ति गुरु की कीजै।

इस मानव तन को पाय सुफल करि लीजै॥

भावार्थ- भादों=भजन की भरपूरता। अब इस भजन की भरपूरता में भ्रम का क्षीण होना, गुरु के प्रति अनुराग का होना और प्रेमरस में भीगे रहना स्वाभाविक ही है। कारण इन्हीं महापुरुषों की देन है कि आज ऐसी रहनी मिलने लगी, किन्तु इन महापुरुषों का आदेश है कि ईश्वर से अधिक भक्ति सद्गुरु की करनी है। महापुरुषों का कहना है कि भक्ति तो स्वाभाविक ही है परन्तु सन्दिग्ध भक्ति, भक्ति नहीं है। ईश्वर से अधिक गुरु की भक्ति होने पर ही यह मानव शरीर सफल हो सकता है। सफलता तो तभी है जब उस कार्य की पूर्ति हो जाय, जिसके लिए यह तन मिला है। प्रायः लोग ईश्वर कुछ है और वह बड़ा है, इन विचारों की सन्दिग्धता में सद्गुरु को हृदय से नहीं पकड़ पाते। साक्षात्कार करने के लिए ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है। गुरु का गुरुत्व पाने पर ही ईश्वर दिखाई देता है, पहले नहीं।

तुमसे अधिक गुरहिं जिय जानी। (मानस, २/१२८/८)

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई।

जो बिरचि संकर सम होई॥ (मानस, ७/६२/५)

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।

सीस दिये सद्गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान॥ (कबीर)

भला वे गुरु कैसे हैं, जिनकी हमें भक्ति करनी है?-

दोहा-ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति, गुरु के लक्षण जान।

इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहचान।।

ब्रह्म के विषय में जाननेवाले हों एवं ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकें, सुरति की गतिविधि में प्रवेश देनेवाले हों, वही गुरु हैं। यह योग का विषय है। केवल मोक्ष की इच्छा रखनेवाला, जिसे सिद्धियाँ और सम्मान की चाह न हो, वही शिष्य है।

होय अमरापुर वासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

ऐसा संयोग बैठने पर ही जो अजर है, अमर है और शाश्वत है, ऐसे पुर में स्थान मिलता है। इष्ट की स्थिति को लानेवाली उस प्रवृत्ति के नियम को सुनो, जिसमें सतत् लगे रहने का विधान है।

सम्बन्ध- सद्गुरु में जब मन का समाधान होने लगता है तब उस परमतत्त्व का संचार अनुभवों में आने लगता है, जिसे लोग 'मैं हूँ'- ऐसा कहा करते हैं।

क्वार में करना यही उपाय,

तत्त्वमसी श्रवणन मन लाय।

जुगुति से मनन करो प्यारे,

खुले जासे अन्दर के ताले।।

भावार्थ- क्वार = विकारों का कट जाना। 'कु' कहते हैं दूषित को और 'अर' कहते हैं काटने को। साधक के द्वारा ज्यों-ज्यों विकारों का शमन होता जायेगा, त्यों-त्यों उसे तत्त्वमसि का आदेश मिलने लगेगा, जैसा कि सद्गुरु पूर्व में ही कहते हैं कि जब हृदय शुद्ध हो जायेगा तो उस तत्त्वमसि का संचार मैं करूँगा। अन्दर से मिलने वाले आदेशों को श्रवण करना एवं उसी में मन को लगाना, बस साधक के लिए इतने ही उपाय का विधान है। साधक मन को उस तत्त्व में स्थिर कर युक्तिसहित उसका मनन करता जाय, ताकि अन्दर के ताले खुल जायँ, जो आत्मा और परमात्मा में अन्तर डाले हुए हैं।

टिप्पणी- वह आदेश क्रमशः मिलता है। जब तक अन्तिम स्थितिवाला आदेश नहीं मिल जाता, तब तक किसी न किसी रूप में ताला लगा ही रहता है। अब रही युक्ति से मनन करने की बात, उसके लिए हम जैसा कि राम-नाम कहते हैं वैसा है नहीं। जब यही नाम मनन की स्थिति में आ जाता है, तब उसका वाणी से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

दोहा-निदिध्यासन के अन्त में, ऐसा होवे भान।

ब्रह्म आत्मा एक लख, तब होय ब्रह्म का ज्ञान।।

निदिध्यासन के अन्त में ऐसा भान होने लगता है कि ब्रह्म और आत्मा परस्पर एक ही हैं और इसी एकत्व दर्शन का परिणाम ही ब्रह्मज्ञान है।

टिप्पणी- हर पहलू की दो सीमायें हुआ करती हैं- एक न्यूनतम और दूसरी अधिकतम अर्थात् प्रवेशिका एवं पराकाष्ठा। उदाहरण के लिए भक्ति को लीजिए। जहाँ से भक्ति की शुरुआत है, वह उसकी न्यूनतम सीमा है और जहाँ वह लक्ष्य को प्रत्यक्ष करने की स्थिति में आ जाती है, वह अधिकतम सीमा कहलाती है। इसी प्रकार निदिध्यासन, जहाँ से चिन्तन के द्वारा हमारा जड़-अध्यास मिटने लगता है, वह प्रवेशिका है और चिन्तन की पूर्णता में जहाँ अध्यास समाप्त हो जाता है वही पराकाष्ठा अर्थात् अन्त कहलाता है।

तहाँ मिथ्या जग नासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

इस ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में मिथ्या जगत् शान्त हो जाता है। अतः चिन्तन करो। लगन अनिवार्य है।

सम्बन्ध- जब ब्रह्म, आत्मा एक हो जाय तो भी क्या कर्म (चिन्तन-क्रम) बना ही रहता है? नहीं, छूट जाता है। इसी पर आधारित है अगला महीना कार्तिक-

कार्तिक में करम सभी नासा,

ज्ञान जब उर में परकासा।

तब अपना आप रूप भाषा,

उसी का लखो तमासा।।

भावार्थ- कार्तिक अर्थात् कर्मों का त्याग। जब ब्रह्म और आत्मा अभिन्न स्थिति में दिखाई देने लगते हैं, तब भजन का कार्य समाप्त हो जाता है। कारण कि उसके आगे कोई भगवान है ही नहीं, जिसको खोजें। इस प्रत्यक्ष दर्शन से सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। शुभाशुभ कर्म- शुभ वह कर्म है जो इष्ट की उपलब्धि के लिए किया जाता है और अशुभ जो जन्म-जन्मान्तर के संस्कार हैं। यह विषयोन्मुख प्रक्रिया है। ऐसा तभी सम्भव है, जबकि ज्ञान का प्रकाश हृदय में हो जाय। प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ही ज्ञान है न कि बकवास। वाक्यज्ञान तो अल्पावधि में ही आ जाता है; परन्तु उस ज्ञान की तो यही पहचान है कि अपना स्वरूप प्रतिभासित होने लगे। उसी का तमाशा देखो। उसकी विशेषता को स्वयं देखो। दूसरा कोई देख ले ऐसी बात नहीं है।

सो सुख जानइ मन अरु काना।

नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।। (मानस, ७/८७/३)

सन्त कबीर से किसी ने पूछा कि, वह सुख कैसा है? तो वे बोले-
कहैं कबीर गुँगे की शक्कर, खाय सोइ पै जानै।

टिप्पणी- जिसमें वह संचारित हो जाय, उसके तमाशे को वही देख सकता है। किसी को पकड़ाया नहीं जा सकता। क्रमशः चलकर तो महापुरुष देते ही हैं, जैसा कि उनका विधान है।

**दोहा-आर-पार हमरो नहीं, नहीं देश काल से अन्त।
 मैं ही अखण्डित एक हूँ, सब वस्तु का तन्त।।**

अब उस खेल का रूप दर्शाते हैं कि ब्रह्म का कहीं न आर है न पार अर्थात् न आदि है न अन्त। अपने को उससे अभिन्न देखा, जो कि हर देश-काल से अबाधित है इसलिए मेरा अन्त नहीं है। वह ब्रह्म अखण्डित एवं सब वस्तुओं का निचोड़ है। उससे अभिन्न होने से मैं भी अभिन्न और सब वस्तुओं का निचोड़ हूँ। इस प्रकार अखण्डित और सब वस्तुओं का तत्त्व मेरी ही संज्ञा है।

**मैं ही चेतन अविनासी।
 लावनी सुन बारहमासी।।**

ब्रह्म परम चेतन एवं विनाशरहित सत्ता है, उसी में मिट गया, स्वरूप है। अब वह लगन कार्य कर चुकी।

सम्बन्ध- जब कोई सत्ता है ही नहीं, तब लोक-परलोक, राम और कृष्ण, ब्रह्मा और विष्णु आदि इनका क्या स्वरूप है? क्या ये भी नहीं बचे? तब कहते हैं कि परमस्वरूप सबकी पराकाष्ठा है। पूर्व की स्थिति कब मिलती है और उसकी क्या विशेषताएँ हैं? इसी का चित्रण इस माह में है।

**अगहन में ज्ञान अग्नि जागी,
 लोक सब दहन कहँ लागी।
 फूँक दिये ब्रह्मा अरु विष्णु,
 फूँक दिये राम अरु कृष्ण।।**

भावार्थ- जैसा कि बताया गया है कि ईश्वर की प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ज्ञान है। उसकी जानकारी होने के कुछ क्षण पूर्व ही पाप समूल नष्ट हो जाते हैं।

अगहन=पाप के हनन की स्थिति। पाप के निर्मूल होने की स्थिति में उस ज्ञान-अग्नि का संचार होता है, जिसमें लोक-परलोक सभी जल जाते हैं। उस अभिन्न जानकारी के अन्दर की बात है राम और कृष्ण, ब्रह्मा और विष्णु। उस अभिन्न स्थिति में ब्रह्मा और विष्णु, राम और कृष्ण की स्थिति सर्वथा विलीन हो जाती है। कारण कि

यह वहाँ तक की अवस्थाओं का ऊँचा-नीचा नामकरण है। ब्रह्मा (जैसे वह चेतन) जिस प्रकार ब्रह्म की जानकारी का प्रसार करता था, विष्णु योगक्षेम की रक्षा करता था, राम जिस प्रकार सर्वत्र रमण करते हुए व्यापकता दर्शाता था और कृष्ण जिस प्रकार आत्मा से कर्तव्य का पूरक था, आदि उसी स्थिति में विलीन हो गये। अभिन्न स्थिति के बाद कौन किसका पोषण करे, कौन किसका प्रसार करे, कौन रमण करे और किससे कर्तव्य की पूर्ति हो?

टिप्पणी- यह तो ब्रह्म जिन-जिन युक्तियों से योगी के सामने प्रसारित होता है, उसी का रूप है। अब वह इन शक्तियों के मूल सहज स्वरूप में ही स्थित हो गया तो किसका पथ-प्रदर्शन करे? विलगता में यही शाखाएँ प्रसारित होकर समझाती थीं। याद रखें, जो अवतार बाहर पाये जाते हैं वे इसी के अपभ्रंश मात्र हैं। यह अपभ्रंश कालान्तर में हो जाया करता है; किन्तु इन्हीं के द्वारा प्रेरित हो प्रत्यक्ष स्थिति पानेवाले के लिए इनका कोई स्थान नहीं रह जाता। अन्तःकरण में जब तक वह इष्ट विशेष कृपा करके पथ-प्रदर्शन नहीं करता, तब तक ईसा, मूसा, मुहम्मद, राम, रहीम आदि की मान्यता है। उसी के द्वारा माध्यमिक स्तर तक बढ़ा जाता है। इसके आगे वही इष्ट बाहर से सम्बन्ध तोड़कर भीतर अन्तर्देश से अपने स्वरूप में जोड़ देते हैं। इस स्तरवाला साधक सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में नास्तिक-सा प्रतीत होता है; परन्तु सही कृपापात्र वही है।

दोहा—जलत जलत ऐसी जली, जाको आर न पार।

ईश्वर जीव ब्रह्म अरु माया, फूँक दियो संसार।।

ईश्वर की अभिन्न स्थिति का नाम ज्ञान है। यह रहनी ऐसी विचित्र है कि उसका आदि एवं अन्त नहीं है अर्थात् वह सर्वत्र है। इस स्थिति में माया एवं संसार तो मिथ्या हैं ही, साथ ही साथ ईश्वर और ब्रह्म की भी संज्ञा नहीं बनती अर्थात् विलीन हो जाती है; क्योंकि उससे भिन्न कोई सत्ता नहीं रह जाती, जिसे कि वह समझे। जब वही है तब किससे कहना और समझना? महात्मा बुद्ध जब इसी स्थिति में थे तो लोगों ने उनसे प्रश्न किया कि, ब्रह्म की स्थिति क्या है? वे शान्त होकर बैठ गये और कोई उत्तर नहीं दिये। मतलब यह था कि ब्रह्म शान्त है, इसलिए शान्ति की तरफ संकेत किये, अनिर्वचनीय है इसलिए मौन हो गये। यही महाराजजी का भी अभिप्राय प्रगट है।

बिना ईधन के परकासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

यह कोई सांसारिक अग्नि नहीं है, जो वस्तुओं के संयोग से जलती है। यह दृष्टान्त मात्र है परन्तु वास्तविक अग्नि इसी को कहा जा सकता है। आग में डालने से जिस

प्रकार वस्तुएँ जल जाती हैं, ठीक उसी प्रकार इष्ट के मेल की अग्नि (योगाग्नि) में सम्पूर्ण जगत् सदा के लिए शान्त हो जाता है। वह बिना किसी सम्बन्ध के स्वयं प्रकाशस्वरूप है। निरन्तर अभ्यास से ही उस अग्नि का प्राप्त होना सम्भव है। कहीं शिथिलता की गुंजाइश नहीं है, इसलिए इसे लावनी कहते हैं। जिसका अर्थ है- निरन्तर लगनेवाली लगन।

टिप्पणी- इसी लगन को समझने के लिए 'राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम।' के तात्पर्य को समझना है। कुछ ही समय के बाद मन के मनोरथ प्रगट होने लगते हैं। इसी अवस्था में बहुत से साधक विश्राम करने लगते हैं। हनुमानजी समुद्र पार करने लगे तो मैनाक पर्वत ने उनके सम्मुख आकर कहा कि विश्राम करो। इस पर हनुमानजी ने उत्तर दिया-

‘राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम।’ (मानस, ५/१)

संसार ही समुद्र है। मन के मनोरथों का प्रकट होना ही मैनाक है और मान का हनन करनेवाला वैराग्य ही हनुमान है।

सम्बन्ध- अब केवल सन्तों की रहनी का चित्रण अवशेष है। जो स्वयं प्रकाशित है, ऐसे प्रकाश में स्थिति आ गई तो क्या महापुरुष भजन नहीं करते? इसी पर पूज्य महाराजजी कहते हैं कि-

**पूष में पूरन आपे आप,
नहिं तहाँ पुन्य अरु पाप।
कहो अब जपूँ कौन का जाप,
मिटा सब जनम-मरण सन्ताप।।**

भावार्थ- पूष (पूर्णता) में पूर्ण अपने आप है। वहाँ न तो पाप है और न पुण्य ही। वहाँ कोई भिन्न सत्ता भी नहीं तो भला बताइये कि मैं किसका जाप करूँ? अन्ततः जन्म-मरण का सन्ताप मिट चुका, जो जाप के लिए प्रेरित करनेवाला था।

दोहा-ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, ध्याता ध्यान न ध्येय।

मम निज शुद्ध स्वरूप में, उपाध्येय नहिं हेय।।

यहाँ न ज्ञाता अर्थात् जाननेवाला है, न जानकारी की कोई युक्ति है और न जानने योग्य ही कोई शेष है। यहाँ न कोई ध्याता अर्थात् ध्यानेवाला है, न कोई ध्यान का क्रम है और न कोई ध्येय ही है। मेरे निज, शुद्ध स्वरूप में जो पूर्ण है, उसकी न तो कोई उपाधि ही है और न उसके नाश का ही विधान है।

करूँ फिर किसकी तल्लासी।

लावनी सुन बारहमासी।।

जब कोई परमसत्ता अर्थात् परमलक्ष्य शेष नहीं, तो फिर किसकी खोज की जाय? ऐसी लगन के बारे में सुनें, जिससे यह स्थिति मिलती है और जिसमें निरन्तर लगे रहने का विधान है।

सम्बन्ध- पूष में पूर्ण तो है; किन्तु पूर्णता का नशा पीछा किये हुए है। आगे चलकर महापुरुषों का यह तनाव भी उतर जाता है। कारण कि जब कोई भिन्न सत्ता ही नहीं है, तो नशा किससे और किसको हो?

लोग जहाँ-तहाँ भूले रहते हैं, इसलिए यहाँ स्थिति प्रत्यक्ष करके अगले पद में सावधानी और आदेश प्रदान करते हैं। महापुरुष इस रहनी में आदेशात्मक शब्द कहते हैं। यदि इसके पूर्व स्थिति में कहते तो वह सन्दिग्ध है। जैसा कि-

भीतर तो हड़ये नहीं, बाहर में परकास।

कह कबीर कब लौं हरी, छपरा पर की घास॥ (कबीर)

माघ में मिटी मिलन की भूख,

तहाँ पर नहीं आसिक माशूक।

इश्क फिर किसका होवे,

वृथा वक्त तूँ क्यों खोवे॥

भावार्थ- इस सन्दर्भ में गीता का यह दृष्टान्त विचारणीय है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन! जगत् में मेरे लिए लेशमात्र भी स्वार्थ-साधन शेष नहीं है। कुछ भी प्राप्त होनेवाली वस्तु अप्राप्य नहीं है। उसी का चित्रण इस माघ में है। श्री परमहंस महाराजजी के शब्दों में वही चरितार्थ होता है कि मुझे किसी वस्तु की लेशमात्र भी भूख नहीं है।

माघ = महा अघ, अघालयम् अशाश्वतम्। इस संसार में मुझे लेशमात्र भी मिलने की भूख नहीं है क्योंकि जिसको मिलना था, वह भिन्न नहीं है। वहाँ न कोई आशिक ही है और न कोई माशूक। अब भला बताइये किससे प्रेम हो? अब आदेशात्मक वाणी है कि वृथा समय क्यों बरबाद करते हो, जबकि ऐसा स्वरूप उपलब्ध है? (ऐसे महान् स्वरूप की उपलब्धि सम्भव है।)

टिप्पणी- ऐसे महापुरुष में उपदेश की प्रवृत्ति रहती है। उसी में कल्याण है। कारण यह कि वह आँखों देखा हाल है। वास्तव में इस स्थितिवाले ही कहने का अधिकार रखते हैं अन्य लोग नहीं। जैसे-

बिन देखे उस देश की, बात कहै सो कूर।

आपै खारी खात है, बेचत फिरै कपूर॥ (कबीर)

बौद्धिक स्तर पर कहनेवाले ही तो इन मत-मतान्तरों के रचयिता हैं किन्तु इस स्थितिवाले नहीं। कारण कि जिसने एक ही सत्ता को सर्वत्र देखा है, वह समाज में दरार नहीं डाल सकता।

दोहा—व्यापक परमानन्द में, नहीं आशिक माशूक।

लक्ष्य रूप में मार निशाना, वृथा विलोवे थूक।।

वह व्यापक है, परम आनन्द है। वहाँ न कोई भजनेवाला है और न भजने के लिए ही कोई शेष रहता है। यही लक्ष्य स्वरूप की स्थिति है। इसी में निशाना मारो। क्यों व्यर्थ में विवाद करते हो, जबकि परिणाम कुछ भी नहीं मिलना है।

करावै क्यों जग में हाँसी।

लावनी सुन बारहमासी।।

क्यों जीव-जगत् अर्थात् जीव योनियों में फँसकर हँसी करवाते हो? थूक विलोने से तो परिणाम में निराशा ही हाथ लगती है। उस लगन के विषय में सुनो, जो छुटकारा दिलानेवाली है अर्थात् परमात्मा जिससे प्रत्यक्ष होता है; किन्तु सम्भव तभी है जब तार न टूटे।

सम्बन्ध- अन्त में किस प्रकार के साधकों की पूर्ति तत्काल होती है, उनका महत्त्व तथा ज्ञान व पद की निर्लिप्त एवं विशेष स्थिति का चित्रण करते हुए अन्तिम पद की समाप्ति कर देते हैं। इस लगन में साधन की नितान्त आवश्यकता की पुष्टि करने के लिए केवल अविद्या को काटा है, जो साधक के क्षेत्र की बात है।

वसन्त ऋतु फाल्गुन में आवे,

खेल यह प्रारब्ध रचवावे।

इत्र गुलाल ज्ञान रोरी,

खेलते भर-भर के झोरी।।

भावार्थ- फाल्गुन=विशेष फलदायक गुण, वसन्त ऋतु=स्थायी मस्ती। सांसारिक ऋतुएँ तो आती-जाती रहती हैं, परन्तु जब हृदय-देश में मस्ती छा जाती है, तो परिवर्तन नहीं होता अर्थात् सदैव कायम रहता है। यह स्थिति फलप्रद गुणों से ही आती है, परन्तु उस क्रिया में प्रवृत्त होने में प्रारब्ध भी सहायक है। इस साधन में प्रारब्ध का विशेष स्थान है।

इत्र जगत् का एक सुगन्धित द्रव्य है। वह इस रहनी में एक प्रतीक मात्र है। जब ईश्वरोपलब्धि में यह सम्पूर्ण खेल सुलभ हो जाता है तब योगी की इन्हीं इन्द्रियों में परमात्मा की सुगन्धि का संचार हो जाता है। गुलाल-रोरी इत्यादि जो सर्वत्र लगाये

जानेवाले पदार्थ हैं, योग की इस रहनी में ये सब ज्ञानसंचार के प्रतीक हैं, जो इस स्थिति के पुरुषों से प्रायः सदैव सबको मिला है। यह स्थिति हृदय में आती है, इसलिए हृदयरूपी झोली में वह रहनी एवं ज्ञान भरपूर रहता है। जैसा कि-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर शेष पूर्ण ही बचा रहता है, वह घटता नहीं।

टिप्पणी- यदा-कदा श्री महाराजजी के पावन मुख से यह बात निकला करती थी कि नाम के प्रभाव से असाध्य को भी साध्य बनाया जा सकता है। इस लावनी में प्रवेश और अन्तिम पराकाष्ठावाली योग्यता तो लगनेवालों के लिए है। यह स्वयं विचार की बात है कि यदि सर्वथा नहीं लग पाते हैं तो नाम का आश्रय ले लेना चाहिए।

‘मेटत कठिन कुअंक भाल के॥’ (मानस, १/३१/६) नाम के प्रभाव से कठिन कुअंक भी मिट जाते हैं। यदि लगन है तो वही प्रारब्ध बन जाता है। कोई महापुरुष कृपा कर दे और उठा दे, तो दुर्गम पथ भी सुगम हो जाता है। सेवा से, समर्पण से अथवा सर्वस्व अर्पण करके भी हम उनके हृदय में स्थान पा लें। महापुरुष किसी के प्रायश्चित्त को स्वयं सहन कर उसको निवृत्ति दिला देते हैं।

दोहा-होली अविद्या फूँकि के, हो गये गुप्तानन्द।

समझे कोई सुघड़ विवेकी, क्या समझे मतिमन्द॥

अविद्यारूपी होली को फूँककर स्वयं आनन्द का स्वरूप बन जाते हैं। जो गुप्त है, आनन्द है, अलख है उसी के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इसको कोई सुलझा हुआ विवेकी ही समझ पाता है, बुद्धिहीन नहीं।

टिप्पणी- भाषा की जानकारी से विवेक-बुद्धि की जागृति नहीं होती। अनेक महापुरुष तो भाषा के नाम पर निरक्षर थे, पर थे परम विवेकी। महान् विवेक का स्रोत उनसे ही निकला है। जैसे कि कागभुशुण्डि को ही लिया जाय, ‘हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाइ’ लेकिन नहीं पढ़े। स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि भी इसी प्रकार के थे।

जगत की धूल उड़ी खासी।

लावनी सुन बारहमासी॥

जगत् अर्थात् जीवगति की धूलि पूर्णतया उड़ गई। जीवगति की नश्वरता विलीन हो गई और परमचेतन की गति बन गई। परमचेतन से अभिन्न स्थिति दिलानेवाली जो लगन है उसकी प्रक्रिया को सुनो, जिसमें पूर्तिपर्यन्त लगे रहने का विधान है। उसके बाद नहीं लगना पड़ता। उसके बाद तो

हरिजन भजन भेद से न्यारा।

आँख न मूँदे कान न रूँधे, काया कष्ट न धारे।

उधरे नैना साहब देखे, सुन्दर बदन निहारे।। (कबीर)

अर्थात् भजन की आवश्यकता नहीं रहती किन्तु भजन बना ही रहता है।

निर्णय

इस अन्तिम पद में सबका निर्णय देते हुए केवल अविद्या को ही क्यों फूँकते हैं, जबकि इस पूर्णता में विद्या भी मिट जाती है? अधिकांशतः देखा जाता है कि मनुष्य साधन-श्रम नहीं करना चाहता परन्तु योग्यता की ख्याति प्राप्त करना चाहता है। जबकि वह प्रत्यक्ष स्थिति है, ख्याति नहीं। अतः उस लगन के द्वारा अविद्या को फूँक दें। इष्ट के स्पर्श-काल में विद्या तो स्वयं मिट जाती है। उसमें आपके मिटाने की कोई प्रक्रिया नहीं है। विद्या तो वह रास्ता है जिसके द्वारा क्रमशः इष्ट की मंजिल तय करते हैं। दर्शन के साथ ही रास्ता समाप्त हो जाता है। यदि अविद्या के साथ विद्या को भी छोड़ने के लिए लिख दिया जाय तो कोरे वेदान्तियों को रास्ता मिल जायेगा। वे कहने लगेंगे कि विद्या झूठी है, इसे छोड़ो। करने की आवश्यकता नहीं है। हम तो पूर्ण हैं, शुद्ध हैं, अजर-अमर परमात्मा हैं- आदि विशेषणों से अपने को अलंकृत कर लेंगे। ऐसा मानने से कुछ होता नहीं, स्वयं तो क्रिया व वस्तु से वंचित रह जाते हैं और दूसरों को भी बाधा पहुँचाते हैं। योगपूर्ति के उपरान्त वास्तव में ऐसा ही है। इसलिए महापुरुष ने केवल इतना ही निर्णय दिया है, जिससे साधक को क्रिया में भ्रम न हो। इस प्रकार साधक को क्रिया द्वारा केवल अविद्या को मिटाना है। विद्या तो स्पर्श, दर्शन आदि के साथ ही मिट जाती है। कालान्तर में फैलनेवाली रूढ़ियों के निवारणार्थ यदा-कदा महापुरुषों को अन्तश्चेतना मुमुक्षुओं के भावी कल्याण के लिए जीवनानुभूति का अमरस्रोत बनकर श्रीमुख से लयात्मक वेग से अनायास ही प्रस्फुटित होने लगती है। परमपूज्य श्री महाराजजी की अमरवाणी से बारहमासी की अतुलनीय परमार्थवादी काव्य-लहरी ऐसी ही कल्याण-कल्पना से तरंगित है। आपकी चिन्तनरत 'भाव लहरी' में यह प्रेरणा प्रादुर्भूत होती है कि परमार्थ पथिक महापुरुषों का आश्रय लेकर साधन-पथ को क्रमशः प्रशस्त करने के लिए प्रयत्नशील होंगे। ऐसी स्थिति में उन्हें सम्बल प्रदान करनेवाले निर्देशात्मक उपकरण यदि किसी तत्त्वदर्शी द्वारा अन्तःकरण में प्रगट हो जायँ तो प्रगति सुलभ हो जायेगी। इसी उद्देश्य की पूर्तिहेतु बारहमासी का संगीतमय वेग उन्मुक्त भाव-प्रवणता के साथ प्रवाहित हुआ है।

इस कृति में लयात्मक छन्द लावनी का प्रयोग सरल किन्तु हृदयस्पर्शी भाषा के परिवेश में सरस एवं बोधगम्य शैली में किया गया है। इसके प्रथम दर्शन एवं पठन से ही हृदय में प्रबल जिज्ञासा का प्रस्फुटन होने लगता है, परन्तु कल्याणात्मक उपलब्धि तभी संभव है जब उसका प्रयोगात्मक पद्धति से अनुशीलन किया जाय। बारहमासी में चैत से लेकर फाल्गुन मास तक का क्रमागत वर्ष-विकास का सामञ्जस्य साधनात्मक ढंग से किया गया है। किस प्रकार अनुरागी के अन्तःकरण में लगन की ज्योति जागृत होती है, वह किस अन्तर्प्रेरणा से प्रभावित होकर महापुरुष की कृपा से लाभान्वित होता है, तदनन्तर उसमें किस तरह विलक्षण अनुभवों का प्रादुर्भाव होता है इत्यादि क्रियात्मक पद्धतियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः यह कृति (बारहमासी) उन्हीं के लिए अधिक उपयोगी है जो साधन-पथ पर चलनेवाले पथिक हैं। पूर्वकथित जागृति से पथ की बाधा, व्यवधान एवं उपलब्धियों का पूर्वाभास मिलता जाता है, जिससे कि साधक उस अदृश्य पथ पर निर्विघ्न रूप से बढ़ता रहता है। अब आप यह न भूलें कि यह जागृति केवल स्थितिप्राप्त महापुरुषों द्वारा ही मिलती है। हाँ, यह कठिनाई अवश्य है कि वे करोड़ों में एक होते हैं, परन्तु हैं सदैव।



शास्त्र

पहले सभी शास्त्र मौखिक थे, शिष्य-परम्परा में कण्ठस्थ कराये जाते थे, पुस्तक के रूप में नहीं थे। आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व वेदव्यास ने उसे लिपिबद्ध किया। चार वेद, महाभारत, भागवत, गीता इत्यादि महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संकलन उन्हीं की कृति है। भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान को उन्होंने ही लिखा किन्तु उन्हें शास्त्र नहीं कहा। उन्होंने वेद को शास्त्र की संज्ञा नहीं दी किन्तु गीता की अनुशंसा में उन्होंने कहा- **गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्माद्विनिःसृता।।** गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है जो भगवान पद्मनाभ के श्रीमुख से निःसृत वाणी है, तब अन्य शास्त्रों के विषय में सोचने या उनके संग्रह की क्या आवश्यकता है? विश्व में अन्यत्र कहीं कुछ पाया जाता है तो उसने गीता से प्राप्त किया है। 'एक ईश्वर की सन्तान' का विचार गीता से ही लिया गया है। इसे भली प्रकार जानने के लिए देखें- **'यथार्थ गीता'**।

अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु तथा मुमुक्षुजन अर्थ-धर्म-स्वर्गोपम सुख तथा परमश्रेय की प्राप्ति के लिए देखें- **'यथार्थ गीता'**।

निवेदक :

भक्तमण्डल

श्री परमहंस आश्रम

शक्तेशगढ़, चुनार, मिर्जापुर, उ. प्र.

सन्देश

भगवान श्रीकृष्ण के हजारों वर्ष पश्चात् परवर्ती जिन महापुरुषों ने एक ईश्वर को सत्य बताया, गीता के ही सन्देशवाहक हैं। ईश्वर से लौकिक, पारलौकिक सुखों की कामना, ईश्वर से डरना, अन्य किसी को ईश्वर न मानना- यहाँ तक तो सभी महापुरुषों ने बताया किन्तु ईश्वरीय साधना, ईश्वर तक की दूरी तय करना- यह केवल गीता में ही सांगोपांग क्रमबद्ध सुरक्षित है। गीता से सुख, शान्ति, समृद्धि तो मिलती ही है किन्तु यह अक्षय, अनामय परमपद भी देती है। इसे प्राप्त करने के लिए देखें श्रीमद्भगवद्गीता की शाश्वत टीका- 'यथार्थ गीता'।

भक्तों की सुविधा एवं उनके आग्रह पर
स्वामी श्री परमानन्दजी
(पूज्य श्री परमहंसजी)
की अमृतवाणी 'बारहमासी' की
परमपूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज
द्वारा की गई व्याख्या
(अमृतवाणी आडियो कैसेट संख्या-६)
लघु पुस्तिका के रूप में अनुशीलन कर
परमश्रेय के भागी बनें।

- प्रकाशक

हमारे प्रकाशन

पुस्तकें

यथार्थ गीता ❖ भारतीय भाषायें

❖ विदेशी भाषायें

शंका समाधान

जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति

अंग क्यों फड़कते हैं? क्या कहते हैं?

अनछुये प्रश्न

एकलव्य का अंगूठा

भजन किसका करें?

योगशास्त्रीय प्राणायाम

षोडशोपचार पूजन-पद्धति

योगदर्शन-प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या

ग्लोरिस् ऑफ योगा

प्रश्न समाज के - उत्तर गीता से

बारहमासी

अहिंसा का स्वरूप

ऑडियो कैसेट्स

यथार्थ गीता

अमृतवाणी

(श्री स्वामीजी के मुखारविन्द से निःसृत

अमृतवाणियों का संकलन

वाल्जूम १ से ५५ तक।)

गुरुवंदना (आरती)

ऑडियोसीडीज् (Mp3)

यथार्थ गीता

अमृतवाणी

भाषा

हिन्दी, मराठी, पंजाबी, गुजराती, उर्दू, संस्कृत, उड़िया, बंगला, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, आसामी, सिन्धी।

अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, नेपाली, स्पेनीश, फारसी, डच, नार्वेजीयन, चायनीज, इटालियन, रूसी, पुर्तगाली।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी।

हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, जर्मन।

हिन्दी, मराठी, गुजराती।

हिन्दी, मराठी, गुजराती।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, जर्मन, अंग्रेजी, नेपाली।

हिन्दी, मराठी, गुजराती।

हिन्दी, मराठी, गुजराती।

हिन्दी, गुजराती, संस्कृत।

अंग्रेजी।

हिन्दी।

हिन्दी।

हिन्दी, मराठी, गुजराती, नेपाली।

हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी।

हिन्दी।

हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, बंगला।

हिन्दी।

© सर्वाधिकार-लेखक

(उपरोक्त पुस्तकों का कोई भी अंश प्रकाशन, रिकार्डिंग, प्रतिलिपि प्रकाशन तथा संशोधन बिना लेखक की अनुमति के वर्जित है।)